नैतिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक शिक्षा का वर्तमान शिक्षा प्रणाली में महत्व

डॉ. प्रवीन शर्मा
प्राचार्य
शहीद भगत सिंह कॉलेज ऑफ एजुकेशन
औढां रोड़ कालांवाली, सिरसा

आज शिक्षा के विकास के कारण मानव ने यहां अपनी बुद्धि के बल पर ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में नई उच्चाईयों को छुआ है वहीं दूसरी ओर वह संवेदना और मानवीय गुणों से दूर होता जा रहा है। पूरे विश्व को प्रान्तीयत, जातियता, साम्प्रदायिकता, भाषा–वाद व क्षेत्र वाद जैसी समस्याओं का सामना करना पड रहा है। आंतकवाद व हिंसा हमारे पर हावी होती जा रही है। मूल्यों में नियन्त्रण गिरावट आ रही है, पारिवारिक सम्बन्ध बिखर रहे हैं। मनुष्य दूसरे मनुष्य को एक सामान की तरह, एक साधन की तरह देख रहा है जिससे वह अपनी भौतिक आवश्यकताएं पूरी कर सके। ऐसा नहीं है दार्शनिकों व शिक्षाविदों को इस बात का ज्ञान नहीं है और उन्होंने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया। विभिन्न कालों में विभिन्न दार्शनिकों ने अपने–अपने समय के अनुसार एक शिक्षा प्रणाली देने का प्रयत्न किया है जिससे समाज में फैली विभिन्न समस्याओं का समाधान हो सके व बालक का भी पूर्ण विकास हो सके परन्तु इसके बाद भी समस्या वैसी की वैसी खड़ी है। आज भी यह प्रश्न हमारे सामने खड़ा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली कैसी हो?

आज शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही है प्रत्येक स्तर पर यह अनुभव किया गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं है। अतः वर्तमान शिक्षा के स्वरूप में अनिवार्यतः परिवर्तन होना चाहिए। हमारे देश के जिन दार्शनिकों व विचारकों ने शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास किया उनमें से अधिकांश पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। लेकिन भारतीय शिक्षा पद्धति के दोषों का समाधान पाश्चात्य सभ्यता की प्रणाली अपनाकर नहीं हो सकता। आज तुलनात्मक शिक्षा ने सिद्ध कर दिया कि किसी भी देश की शिक्षा वहां की भौतिक, राजनैतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप निर्मित होती है। अतः किसी देश की शिक्षा बिना इन विषयों का ध्यान रखे दूसरे देश में लागू नहीं की जा सकती। इसलिए भारत की शिक्षा प्रणाली का स्वरूप जब तक भारतीय नहीं होगा, उसे दोषों से मुक्त नही किया जा सकता। भारतीय शिक्षा के मूल में भारतीय दर्शन, धर्म, आध्यात्मिकता, नैतिक मूल्य नहीं होगें, तब तक भारतीय भूमि पर कोई अन्य शिक्षा व्यवस्था सही सफल हो सकती।

शिक्षा की दृष्टि से भारतीय दृष्टिकोण प्रमुख रूप से अध्यात्मवादी रहा है। अध्यात्मवादी होने का यह अर्थ नहीं है कि भारतीय शिक्षा सांसकारिता का पूरी तरह परित्याग कर डालता है। इसका केवल यह उद्देश्य है कि शिक्षा को एकांगी नहीं होना चाहिए। उसे भौतिक तथा अध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से संतुलित होना चाहिए।

भारतीय अध्यात्मिक चिंतन के अनुसार मानव जीवन के लिए चार पुरूषार्थों का परिपालन आवश्यक है। और वे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। धर्म और मोक्ष आत्मा के गौरव के सरंक्षण के लिए आवश्यक है, जबकि अर्थ और काम सांसारिक जीवन की संपन्नता के लिए जरूरी है। शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति को सांसारिक रूप से संपन्न बनाने के साथ–साथ ही अध्यात्मिक रूप से बलवान बनाना भी होना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा में आदर्श और व्यवहारिकता दोनों का संगम होना चाहिए।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का सामंजस्य करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। परा और अपरा विद्याएं जब समन्वय के सूत्र में बंध जाती है, तब उनसे प्रभावित व्यक्ति केवल प्रिय दिखाई देने वाली वस्तुओं के पीछे नहीं दौड़ता है और श्रेय मार्ग का अनुसरण करने के लिए तत्पर हो जाता है। शिक्षा तभी उस स्तर को स्पर्श करती है जब वह किसी निश्चित वर्ग, समाज या राष्ट्र के लिए सीमित न होकर समस्त लोक कल्याण के लिए अग्रसर होती है। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य कभी भी संकीर्णता उत्पन्न करना नहीं रहा। उसका उद्देश्य हमें विश्व जनीन व्यक्ति के रूप में ढालना रहा है। इसलिए वह हमेशा यह कहती रही है, कि इस देश की शिक्षा अपने स्वरूप के कुछ इस तरह की हो कि समस्त विश्व उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके।

यद्यपि संसार कर अवहेलना नहीं की जानी चाहिए, जगत की उपेक्षा समीचीन नहीं है, किंतु विद्या का अंतिम उद्देश्य आध्यात्मिक पूर्णता प्रदान करना होना चाहिए। तभी वह व्यक्ति का सही अर्थ में उत्थान कर सकती है। इस तरह की विद्या से वह सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है जो व्यक्ति को जीवन संघर्ष के क्षणों में भी सुख दुःख की परवाह न करके आगे ही आगे बढ़ाती रहती है। महाभारत का कथन है कि विद्या वह चक्षु है जो व्यक्ति को शुभ और अशुभ में तत्कालिक सुख प्रदान करने वाली वस्तु तथा शाश्वत आनंद प्रदान को बारंबार दोहराया है जैसे – विवेकानंद का कथन है कि शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता के विकास का नाम है। यह शिक्षा जो समुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उनकी चरित्र शक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनके मन में परहित की भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती, क्या उसे हम शिक्षा का नाम दे सकते हैं? विवेकानंद का यह स्पष्ट मत है कि शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो शिशु के मस्तिष्क में भर दी गई है और वहाँ पड़े–पड़े सड़ती रहती है। और जीवन में कुछ काम नहीं आती है। उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि शिक्षा को धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता है। किंतु यह धर्म सांप्रदायिक धर्म नहीं है। यह वेदांत धर्म है जिसमें ब्रह्म की विराटता मौजूद है। स्वामी विवेकानंद ने मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के अतिरिक्त शारीरिक शक्ति को भी महत्त्व दिया है और मानते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सभी तरह से शक्तिशाली बनाना है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर यह मानते थे कि शिक्षा का काम प्रकृति देवी की भाँति मानवीय परिवेश के साथ प्रियत्वबोध जाग्रत करने का नाम है। शिक्षा का काम केवल बौद्धिक विकास करना नहीं है बल्कि मानव की कोमल वृत्तियों का विकास करना भी है। इसलिए शिक्षा में धर्म और दर्शन ही नहीं, साहित्य और कला को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

महात्मा गाँधी की मान्यता थी कि शिक्षा का अर्थ है बालक और मनुष्य के शरीर मन और आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है उसका प्रस्फुटन करना। आत्मा का विकास ही चरित्र निर्माण है। केवल साक्षरता शिक्षा का सही उद्देश्य कभी नहीं कहा जा सकता। साक्षरता केवल सही शिक्षा को प्राप्त करने का एक माध्यम है। गाँधी जी भी यह मानते थे कि शिक्षा को वास्तविक धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता है, क्योंकि धर्म के माध्यम से ही व्यक्ति के विचार और आचरण के उदात्त बनाया जा सकता है।

अरविंद ने भी शिक्षा के संदर्भ में कुछ इसी तरह के विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके अनुसार बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति में जो सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अंतरंग और जीवन–पूर्ण है उसे अभिव्यक्त करना होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज को दैवीयपूर्णता प्रदान करने में सहायता देना है। अरविंद के दर्शन को हम एक ऐसा दर्शन कह सकते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को सभी तरह से परिपूर्ण बनाना चाहता है। अरविंद ने स्पष्ट शब्दो में कहा है – "शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए विकासशील जीवात्मा के अपने भीतर जो कुछ सर्वोत्तम है उसके

प्रस्फुटन मे सहायक होना तथा एक श्रेष्ठ उपयोग के लिए उसे परिपूर्ण बनाना। इसलिए मनुष्य की देह, उसके प्राण, उसकी इंद्रियाँ, उसका मन, उसका हृदय, सभी कुछ विकसित करना परिपूर्ण शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए अनेक आयोग व समितियों का गठन किया गया। लगभग सभी ने किसी न किसी रूप में नैतिक, आध्यात्मिक व धार्मिक शिक्षा का समर्थन किया है जैसे – स्वतंत्रता पश्चात विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) से लेकर दसवीं पंचवर्षीय योजना तक अनेक आयोगों, समितियों एंव नीतियों में शिक्षा को मूल्य आधारित कर मानव चेतना विकासोन्मुखी करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मूल्यों को धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक अथवा सामाजिक मूल्यों के नाम से वर्णित किया गया है। उदाहरणार्थ भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (1948–49) ने धार्मिक शिक्षा शब्द का प्रयोग किया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) ने 'चरित्र की शिक्षा' शीर्षक के अंतर्गत धार्मिक तथा नैतिक निर्देश एंव भारतीय शिक्षा आयोग (1964–66) ने सामालिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के माध्यम से हमारे सांस्कृतिक बहुआयामी समाज में सार्वभौम एंव सार्वकालिक मूल्यों द्वारा देश एवं समाज में एकता एवं अखण्डता की स्थापना की आवश्यकता पर जोर दिया गया। शिक्षा नीति के अनुसार मानवीय मूल्यों की शिक्षा रहस्यवाद, धर्मान्धता, हिंसा एवं अंधविश्वास से पूर्णतया मुक्त करने वाली तथा वैज्ञानिक, दर्शन आधारित होनी चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा (1986) में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को समाज में स्थापित करने हेतु एक शक्तिशाली माध्यम बनाने के लिए पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन करने की बात कही गई।

नैतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक शिक्षा में शुभ एवं अशुभ पर विचार होता है। इनमें अच्छे आचरण के लक्षणों पर विचार किया जाता है। अच्छा क्या है और बुरा क्या है? हमें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए? इसकी भी जानकारी भी इसी प्रकार की शिक्षा से ही मिलती है।

नैतिक, आध्यात्मिक या धार्मिक शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान, समाज–शास्त्र एवं मानव–विज्ञान भी व्यवहार के ही शास्त्र हैं, किन्तु ये विज्ञान व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में केवल तथ्य एकत्र कर लेते हैं और उनका स्पष्टीकरण करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा में व्यवहार का मूल्यांकन होता है। इस प्रकार की शिक्षा में इस बात पर विचार होता है कि अच्छा या बुरा क्या है? किसी भी कार्य को करने में मनुष्य कितना स्वतन्त्र है? इसमें साध्य एवं साधन पर भी विचार किया जाता है। भारत में नैतिक, आध्यात्मिक या धार्मिक शिक्षा पर बड़ी गम्भीरता से विचार हुआ है। "श्रीमद्भगवत्गीता", गुरू ग्रंथ साहिब, कुराण व अन्य धर्म ग्रंथों में कार्य के शुभाशुभ गुणों पर विचार किया गया है।

शिक्षा से बालक के व्यक्तित्व का में विकास होता है। इसमें उचित एंव अनुचित का या अच्छे एवं बुरे का निर्णय करना आवश्यक है। हम कुशिक्षा नहीं चाहते हैं। 'शिक्षा' शब्द में ही भद्र एवं अभद्र का प्रयत्न निहित है। हम उद्देश्यों का निर्धारण करते समय स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शिक्षा द्वारा अमुक परिवर्तन लाने चाहिएं। 'चाहिए' का प्रत्यय 'है' के प्रत्यय से भिन्न होता है। मनोविज्ञान एवं समाज–शास्त्र में व्यवहार जिस प्रकार का है, उसकी व्याख्या कर दी जाती है और उसके औचित्य पर विचार नहीं किया जाता। शिक्षा में औचित्य का निर्धारण आवश्यक है। इसीलिए शिक्षा–शास्त्र को नैतिक, आध्यात्मिक व धार्मिक मूल्यों से बडी सहायता मिलती है।

हम शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करने में एवं विनय की स्थापना करने में नैतिक, आध्यात्मिक या धार्मिक शिक्षा से सहायता लेते हैं। विद्यार्थियों मे अनुशासन की समस्या मुख्य रूप से नैतिक समस्या है। अनुशासनीन युवक में अनुशासन के प्रति नैतिक भावना का उदय ही नहीं हो पाता और वह यह सोच नहीं पाता कि उसे क्या करना चाहिए। अनुशासनहीनता,

धैर्यहीनता, असहनशीलता, हिंसा, क्रोध, असंयम, गुरूजनों व बड़ों प्रति अनादर, जातिवाद, धर्मांधता आदि अनेकों समस्याएं जो वर्तमानकाल में दिखाई देती है व किसी न किसी रूप में नैतिक अध्यात्मिक व धार्मिक शिक्षा के न होने के कारण ही है।

इस प्रकार वर्तमान शिक्षा मनुष्य को मात्र सुविधा एंव भोग के संसाधन उपलब्ध करने में सक्षम बनाती है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा मात्र रोजगारोन्मुखी न होकर समग्र विकासोन्मुखी हो। एक ऐसी साहित्यिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करें जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रतिबिम्ब करें और राष्ट्रीय नियंत्रण में हो तथा जो राष्ट्र को ध्येय की ओर ले जाये। हमें ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का सृजन करना चाहिऐं जो हमारी अपनी परम्पराओं पर आधारित हो और जो हमारे लोगों के जीवन उनकी अवश्यकताओं और उनकी आकाक्षांओं के अनूरूप हो और यह धर्म, नैतिक शिक्षा व अध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा वर्तमान कालीन शिक्षा से सम्बंधित समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अग्रवाल, जे.पी. (1993) भारतीय षिक्षा की वर्तमान समस्याएं

कुमार, विजेन्द्र. (2003). भारतीय षिक्षा का इतिहासः नई दिल्लीः अर्जुन .

पाठक, पी.डी. (2005) भारतीय षिक्षा और समस्या दृ भागरः विनोद .

सिन्हा, अमरजीत. (2003). सभी के लिए आधारभूत षिक्षा. नई दिल्लीः सेग प्रकाषन

द्विवेदी, ओ.पी. 1982 : विश्व धर्म और पर्यावरण, गीतांजलि प्रकाशन, नई दिल्ली।